Er./Dr. A.B.L. Gupta (Tanmaya)
A.M.I.E. (India)
Executive Engineer (Retd.)
CONSULTANT HOMOEOPATH
Exponent of Vedic Philosophy
Founder of Science & Spirituality
Co-ordination Federation

श्री सनातन धर्म सभा (पंजीकृत)
शिव मन्दिर, लोक विहार, दिल्ली–११००३४

Gayatri Dham
B-340, Lok Vihar,
Pitam Pura, Delhi-110034
Ph. : 7184145

ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी विक्रमी संवत २०५८
दिनांक : १९ मई, २००१

वैदिक शासन व्यवस्था - ऋषि तन्त्र

मानव समाज को अधिक से अधिक सुख एवम् समृद्धि कैसे प्राप्त हो, इस विचार पर हमारे पूर्वजों ने भरपूर चिन्तन एवम् मन्थन किया था और एक ऐसे समाज की रचना की थी, जिसका उद्देश्य था, **कि सांसारिक भोगों के साथ-साथ हर मानव को ईश्वर तक कैसे पहुँचाया जाय ?**

आज हम समाज में शासन व्यवस्था के कई सारे स्वदेशी और विदेशी नामों की चर्चा सुनते हैं । जैसे :- राजतन्त्र, एक तन्त्र, अधिनायकवाद, साम्यवाद, समाजवाद, पूँजीवाद, प्रजातन्त्र इत्यादि । सभी प्रकार की शासन व्यवस्थाओं में कुछ न कुछ अच्छाइयाँ और बुराइयाँ हैं । आज संसार के अधिकांश देशों में प्रजातन्त्र शासन व्यवस्था मान्य है । सभी प्रकार की शासन व्यवस्थाओं को समाज ने किसी न किसी काल में अनुभव कर लिया है ।

1. राजतन्त्र :- देश का शासन एक राजा के द्वारा तथा परम्परा से उसके पुत्रों द्वारा चलाया जाता रहा है । इस व्यवस्था में यदि राजा और उसके सलाहकार मंत्री नीतिज्ञ एवम् धार्मिक प्रवृत्ति के रहे हैं, तो प्रजा की सुख समृद्धि स्वत: होती रही है । धार्मिक प्रवृत्ति तथा नीति को बनाए रखने हेतु किसी काल में यदि राजगुरु एवम् सुयोग्य मंत्री परिषद होती रही है, तब राजा भी विद्वानों का सम्मान करने वाला तथा प्रजा वत्सल होता रहा है । सम्राट विक्रमादित्य के काल का उदाहरण इसका स्वर्णिम उदाहरण कहा जा सकता है । परन्तु राजा के भ्रष्ट एवम् दुराचारी होने से प्रजा का शोषण होना स्वाभाविक है । फिर प्रजा को न्याय न मिलने से प्रजा द्वारा विद्रोह होना भी स्वाभाविक है ।

2. एकतन्त्र एवम् अधिनायकवाद :- एक ही व्यक्ति द्वारा शासन का चलाया जाना; राजा की इच्छा को ही अन्तिम नियम के रूप में माना जाना प्रजा को मानों जेल की काल कोठरी में डाला देना जैसा है । राजा व्यभिचारी व अत्याचारी होकर अपने एशोआराम के अतिरिक्त प्रजा के प्रति उत्तरदायी नहीं होता था, तब यह काल बहुत ही भयानक रहा है । राजा की सनक राजाज्ञा के रूप में प्रतिपालित होने पर प्रजा बहुत कष्ट भोगती रही है । औरंगज़ेब तथा अन्य मुस्लिम शासकों; जैसे मोहम्मद तुगलक के शासन काल इसके उदाहरण दिए जा सकते हैं । हिटलर एवम् मुसोलिनी के शासन अधिनायकवाद (Dictatorship) के उदाहरण हैं ।

3. साम्यवाद एवम् समाजवाद :- समाज ही सर्वोपरि है । राज्य की पूरी सम्पत्ति का स्वामित्व प्रजा का ही है । प्रजा द्वारा चुने प्रतिनिधि राज-काज तो चलाएंगे, परन्तु सम्पत्ति का बँटवारा यथासम्भव बराबर-बराबर का होगा, लगभग ऐसी ही कुछ सोच साम्यवादियों एवम् समाजवादियों की रही है । रूस द्वारा संचालित साम्यवादी सोच कुछ इस प्रकार की ही थी, जो अब सोवियत रूस के विघटित होने के साथ-साथ बदलने लग रही है । इस व्यवस्था में ईश्वर एवम् राजा का लगभग कोई स्थान नहीं है । मजदूर वर्ग को अधिक महत्व दिया गया । भौतिक सुखों का बँटवारा सभी को प्राप्त हो, इस सोच के अन्तर्गत **प्रजा में स्व-प्रेरणा का अभाव हो गया तथा उत्पादकता दिनों-दिन गिरती गयी, परिणाम में गरीबी, भुखमरी, अभाव से समाज चरमरा गया ।** लेनिन एवम् मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त समय की कसौटी पर सफल न हो सके ।

4. पूँजीवाद :- मशीनीकरण के इस युग में तरह-तरह के उद्योगों का विस्तार हुआ है । नयी सभ्यता के विकास के साथ-साथ हमारी अभिलाषाएं और-और बढ़ती गयीं । धन का केन्द्रीकरण हुआ है । एक ओर अधिक धन, दूसरी ओर अभाव, बेरोजगारी, गरीबी से जूझ रही बहुत बड़ी संख्या में मानवता त्राहि-त्राहि कर रही है, परन्तु धनपतियों को इसकी परवाह नहीं । वैश्वीकरण (Globalisation) से बड़ी-बड़ी कम्पनियों के पास बेशुमार धन इकट्ठा हो रहा है । इस पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के द्वारा ये देश अब विश्व में अपना आर्थिक शासन स्थापित करने पर तुले हुए हैं । पूँजीपति देश इस अधिक धन का उपयोग विनाशकारी आणविक शस्त्रास्त्रों के निर्माण में लगा रहे हैं । शोषण करना ही इनका मूल मंत्र है । इस व्यवस्था से प्रतिस्पर्धा, हिंसा तथा घृणा का जन्म हुआ है । अनेक प्रकार के अपराध एवम् AIDS तथा Cancer जैसे रोगों का जन्म भी घृणा एवम् द्वेष जैसी प्रवृत्तियों से होना स्वत: सिद्ध है । इसी को हमारे पूर्वजों ने शायद रौरव नरक की संज्ञा दी थी।

5. प्रजातन्त्र :- आज चारों और प्रजातन्त्र का बिगुल बज रहा है । पाश्चात्य देशों द्वारा प्रचारित - संसद् शासन व्यवस्था अथवा राष्ट्रपति शासन व्यवस्था दो प्रकार की शासन व्यवस्थाएं चल रही हैं । इन व्यवस्थाओं में प्रजा को भारी अधिकार प्राप्त हैं और प्रजा को भौतिक सुखों के भोग की खूब छूट भी है । परन्तु अति व्यभिचार, यौनाचार, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, घूसखोरी, जुआ एवम् शराब से उत्पन्न **मानसिक तनाव तथा अवसाद के कारण अपराधों, आत्म हत्याओं एवम् असामयिक मृत्यु की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि हुई है । परिणामस्वरूप विक्षिप्त और अशान्त मन लिए पश्चिमी जगत त्राहि त्राहि कर उठा है । वह अब भारत की ओर शान्ति हेतु उन्मुख है ।**

6. ऋषितन्त्र :- ऋषि तो थे त्रिकालदृष्टा । उन्होंने सभी बातों को खूब जाँच परख कर ही ऐसी व्यवस्था का निर्माण किया था, ताकि बहुमूल्य मानव जीवन को पुन: निकृष्ट योनियों में न जाना पड़े और वे सीधे ईश्वर में लीन हो जायें ।

ऋषि समाज का सर्वश्रेष्ठ एवम् परम आदरणीय व्यक्ति होता था । सभी तत्कालीन ऋषि मिलकर ब्रह्मर्षि का चुनाव करते थे और इनको तब वशिष्ठ जैसे राजगुरु से मान्यता भी प्राप्त करनी होती थी । इसके पश्चात् ही वे किसी आश्रम के स्वामी बनते थे । राम के काल में चार ऐसे आश्रम थे, जो ब्रह्मर्षियों द्वारा संचालित किए जाते थे । ये थे - 1. बाल्मीक 2. विश्वमित्र 3. भरद्वाज एवम् 4. अगस्त । ब्रह्मर्षि एक महान शास्त्रज्ञ, शोध प्रवृत्ति वाला, सभी भौतिक एवम् आध्यात्मिक विषयों का विशेषज्ञ, विज्ञानी (Scientist) एवम् ब्रह्मज्ञानी होता था । वह वन में किसी बहुत बड़े आश्रम का स्वामी होता था, जहाँ पर हजारों ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करते थे । वहाँ पर सभी प्रकार के विषय, जैसे - समाज शास्त्र, ज्योतिष, साहित्य, कला, विज्ञान, कॉमर्स, कृषि आदि अनेकानेक विषयों का अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध रहता था । अन्य छोटे आश्रम भी होते थे, जो अन्य ऋषियों द्वारा चलाए जाते थे, परन्तु ये आश्रम बड़े आश्रमों से जुड़े होते थे ।

कौन-सा बालक किस प्रवृत्ति का है, उसकी रुचि को ही परख कर उस ब्रह्मचारी को उन्हीं विषयों का अध्ययन कराया जाता था तथा आश्रम में ही यह तय हो जाता था, कि कौन सा बालक किस वर्ण की प्रवृत्ति का है, ताकि उसी की रुचि; जैसे - कृषि अथवा शस्त्र विद्या या पूजा-अर्चना एवम् उच्च आध्यात्मिक शिक्षा

विधि के विषय ही उसे पढ़ाए जायें और वह समाज में लौटकर जब जाय, तो उसी प्रकार की ली गयी शिक्षा से समाज की भरपूर सेवा कर सके । ऊँच-नीच की बात या जातिवाद की बात नहीं थी । जो बालक पढ़ाई लिखायी नहीं कर पाते थे उन्हें छोटे सेवा कार्य सफाई आदि के कार्य सौंप दिए जाते थे, परन्तु किसी विशेष परिवार में उत्पन्न होना मुख्य कारण नहीं था । नारद, बाल्मीक, वेद व्यास, उद्दालक, जाबाल यद्यपि शूद्र माता से उत्पन्न हुए थे, परन्तु जिस प्रकार के श्रेष्ठतम ब्राह्मणत्व के कार्य ये ऋषि कर गये, वह भारतीय वाङ्मय के प्रकाश स्तम्भ हैं और आगे भी रहेंगे । ऋषि के आधीन चार विभाग और होते थे :-

1. शोध एवम् विकास संस्थान (R & D deptt.) :- इस विभाग का कार्य संचालन उन श्रेष्ठ जिज्ञासुओं (खोजी व्यक्तियों) द्वारा होता था, जिन्हें विप्र कहा जाता था । विप्र का अर्थ है, जिसने प्रकृति (प्र) पर विजय (वि) प्राप्त कर ली हो । साधारण मानव की प्रकृति (स्वभाव) होता है - इन्द्रियों की चाह को पूरा करते रहना अर्थात् खाओ, पिओ, मौज करो (Eat, drink and be merry) । अस्सी हजार शौनक ऋषियों का उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है, कदाचित् ये खोजी विप्र रहे होंगे । ये विप्र सदाचारी, त्यागी, ब्रह्मचारी, तपस्वी प्रकृति के होते थे तथा सदैव मानव समाज की ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण प्राणी जगत के हित के चिन्तन में रत रहते थे । इन्हीं चिन्तनो से निसृत विचारों के शोध को हर वर्ष शोध पत्रों के रूप में तैयार करके विद्वानों के अनुमोदन हेतु वार्षिक कुम्भ सम्मेलनों पर प्रस्तुत किया जाता था । विद्वानों के सम्मेलनों में बहुत बार मन्थन होकर अन्त में बारह वर्षीय प्रयाग राज के कुम्भ पर इस शोध पत्र को अन्तिम स्वीकृति अथवा अस्वीकृति मिलती थी और तब इसे वेद एवम् शास्त्र में लिख लिया जाता था । ये विचार कोई साधारण विचार न थे । न ही किसी एक व्यक्ति द्वारा कहे गये थे। **इसीलिए ये विचार वेद के बड़े-बड़े सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किए गये ।** यही कारण है, कि वेदों में कदाचित् ही किसी लेखक का नाम है । आत्मा-परमात्मा की खोज उपनिषदो का मुख्य भाग है । अहम् ब्रह्मास्मि, तत्वमसि, सोऽहम् इत्यादि तथा 'चक्र का सिद्धान्त' एवम् 'यथापिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' जैसे सूत्र और भी बड़े-बड़े सिद्धान्त; जैसे- ***(अ) कर्म का सिद्धान्त (ब) यज्ञ का सिद्धान्त (स) पुनर्जन्म एवम् (द) लोक-परलोक के सिद्धान्त*** **। ये सभी सिद्धान्त विप्रों द्वारा खोजे गये थे एवम् अनेक विद्वानों की सामूहिक बुद्धि द्वारा निर्णीत थे, अतएव वेद को ब्रह्मा की वाणी कहा गया, चूँकि ये विचार त्रिकाल सत्य भी हैं, अतएव इन्हें अन्तिम सत्य (ultimate truth) के रूप में स्वीकार किया गया । नोट करने की बात यह है, कि अन्य धर्मों में मात्र एक व्यक्ति (पैगम्बर) द्वारा कही गयी बात को अन्तिम सत्य मान लिया गया है और उसके द्वारा कही गयी बात को चुनौती दिए जाने पर उसका वध कर दिया जाता है, यह घोर असभ्यता एवम् क्रूरता है । वेद की वाणी विज्ञान सम्मत है, पूर्ण तर्क पर आधारित है तथा साहित्य कला एवम् विज्ञान इन तीन धाराओं के मिलन से बनी है, इसीलिए प्रयागराज में गंगा, यमुना एवम् सरस्वती का संगम माना गया है तथा इसको पवित्रतम एवम् सभी तीर्थों का राजा भी । सरस्वती वह काल्पनिक नदी है, जो विद्वानों के अन्तस्तल से निसृत है ।** यह कोई भौतिक नदी नहीं है । अनेक अधूरी समझ के लोग सरस्वती की खोज में समय और धन का अपव्यय करने में जुटे हुए हैं । **प्रतीकों की भाषा हिन्दू धर्म का आधार है । प्रतीकों का सिद्धान्त गायत्री मंत्र के द्वारा प्रतिपादित किया गया था, इसीलिए गायत्री मंत्र हिन्दू धर्म का आधार स्तम्भ है और इसीलिए महामंत्र भी ।** *(कृपया लेखक द्वारा लिखित 'गायत्री मंत्र की वैज्ञानिक व्याख्या' देखें)*

उपरोक्त चार सिद्धान्तों के प्रतिपादन के बाद ईश्वर प्राप्ति के दो उपासना मार्ग बतलाए गये हैं, जो वेद में सन्निहित हैं :-

(क) निर्गुण निराकार साधना मार्ग (ख) सगुण साकार साधना मार्ग । गायत्री मंत्र में ऋषि विश्वामित्र ने सगुण साकार उपासना का मार्ग सुझाया था, इसीलिए वे विश्व के मित्र बन गये और तभी से सगुण साकार उपासना पद्धति वेद का छटवाँ स्तम्भ बनी । **पूर्व में निर्गुण निराकार उपासना पद्धति ही मान्य थी,** परन्तु निर्गुण-सगुण का झगड़ा गायत्री की खोज के साथ ही समाप्त हो गया । इसीलिए गायत्री मंत्र को वेद माता अथवा सावित्री माता कहा गया तथा भगवान कृष्ण ने गायत्री को छन्दसामहम् गायत्री भी कहा । *(गीता-10/35)*

2. सतर्कता विभाग (Vigilance Deptt.) :- इस विभाग के स्वामी परशुराम कहलाते थे । जो राजा शास्त्र में लिखित नियमों को पालन नहीं करता था तथा उन्हें अपने राज्य में लागू नहीं करता था, उसे ये विभाग के लोग या तो गद्दी से उतार देते थे अथवा वध कर देते थे । इन परशुराम का दबदबा इतना अधिक था, कि हर राजा इनसे थरथर काँपता था । राजा जनक की सभा का दृश्य तुलसी कृत रामायण में देखने की कृपा करें । थोड़ी सी ध्वनि सुन पड़ी, कि किसी क्षत्रिय राजकुमार ने गड़बड़ की है (धनुष तोड़ा है), पहुँच गये फौरन धमकाने । युद्ध करो ! ललकार दिया । यह दूसरी बात है, कि श्रीराम के साथ उनकी दाल नहीं गली, परन्तु बाकी राजाओं का क्या हाल हुआ ? अम्बा ने शिकायत की, भीष्म से लड़ने पहुँच गये । सभी राजाओं से शास्त्राज्ञा का पालन करवाना सतर्कता विभाग का कार्य था । नोट करने की बात यह है, कि राजा को कानून बनाने का कोई अधिकार न था । यहाँ तक कि राजा दशरथ अपने बेटे राम को बिना वशिष्ठ की आज्ञा के युवराज भी नहीं बना सकते थे । राजा दशरथ की संसद् में कहा जाता है, कि 108 सांसद् (विप्र) थे, जो कानून बनाते थे और वे नियम राजा दशरथ को वशिष्ठ के निर्देशानुसार मात्र पालन करने होते थे । **ऐसे राजा को ही ईश्वर का अंश कहा जाता था,** किसी निरंकुश राजा को नहीं । किसी राज्य में यदि कोई व्यक्ति अकाल मृत्यु से मर जाता था, तो इस बात का उत्तरदायित्व राजा का होता था । राजा विलासी व निरंकुश न बन पाये, इसके लिए उस पर अनेक बन्धन थे ।

नोट :- शौनक (खोजी विप्र संगठन का शीर्षस्थ), विश्वमित्र (खोजी वैज्ञानिक एवम् ब्रह्मर्षि), परशुराम (ऋषि एवम् सतर्कता विभाग के स्वामी), वशिष्ठ (ब्रह्मर्षि, राज्य संसद् का शीर्षस्थ एवम् राजगुरु) ये सभी नाम गुरु-शिष्य परम्परा से चलते रहे हैं । ये व्यक्ति विशेष के नाम नहीं हैं, बल्कि पदवी (Title) हैं; जैसे - आज भी आदि शंकराचार्य के शिष्य शंकराचार्य ही कहलाते हैं । विदेशी आक्रान्ताओं के आतंक एवम् कत्लेआम के साये में लम्बे अर्से तक रहने के कारण हम सही अर्थ भूल चुके हैं ।

3. प्रचार विभाग (Publicity Deptt.) :- इस विभाग में दो प्रकोष्ठ थे :- ***(i) सन्यासी (ii) ब्राह्मण ।***

3(i) सन्यासी :- 75 वर्ष अथवा उससे ऊपर के जो संन्यस्त हो चुके विद्वान होते थे तथा जो अच्छे प्रवक्ता होते थे, उनके संगठित दल ऋषि की आज्ञा से और राजा की प्रार्थना पर सभी राज्यों में भेजे जाते थे । शासन व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहे, इसलिए राज्यों की सीमाएं छोटी होती थी । परन्तु पूरी भारतभूमि एक सांस्कृतिक विचारधारा, धार्मिक आस्था एवम् भाषायी एकता में दृढ़ रहे, इस कार्य में संन्यासियों की भूमिका अहम् थी । लगता है, कि महाभारत काल तक किसी न किसी रूप में उपरोक्त व्यवस्था चलती रही थी । **सभी प्रकार के मतभेदों एवम् शंकाओं का समाधान केन्द्रीय कार्यालय प्रयागराज द्वारा किया जाता था।** इसीलिए उस काल में आज की भाँति अनेक सम्प्रदायों; जैसे - ब्रह्माकुमारी, राधास्वामी, निरंकारी, सिख, बौद्ध, जैन, आर्य समाज आदिकों का जन्म नहीं हुआ था। **ये सभी सम्प्रदाय एक व्यक्ति के मत पर आधारित हैं, सामूहिक निर्णय पर नहीं ।** ये सन्यासी हर गृहस्थी में बेरोकटोक जाते थे । भोजन व वस्त्र लेते थे तथा हर गृहस्थी को उपदेश देते थे । जगत की निःसारता समझाते थे । ईश्वर नित्य है, संसार अनित्य है । जागते रहो ! जागते रहो ! सो मत जाना ! बस यही संदेश था उन संन्यासियों का । **वे थे समाज के प्रहरी जिनको चिन्ता थी, कि समाज का हर व्यक्ति किस प्रकार मोक्ष तक पहुँचे ?** राजा हर वर्ष ऋषि के पास जाकर प्रणाम करता था । धर्म प्रचार की प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता था और नए वर्ष के लिए आवेदन भी । इस प्रकार की मन्त्रणा का कार्य कुम्भ पर्व पर ही होता था।

*3(ii) **ब्राह्मण** :-* नगर अथवा ग्राम निवासी जनता के मार्गदर्शन हेतु ब्राह्मणों को ऋषि ही नियुक्त करता था, जो पूर्ण रूप से आश्रम द्वारा सुशिक्षित होते थे । इनका जीवन भी तपस्वी होता था । उच्च शिक्षा, संयम से ओत-प्रोत ये ब्राह्मण समाज में रहकर हर गृहस्थी का मार्गदर्शन करते थे उन्हें बतलाते थे, **कि *"स्वस्थ और सुखी जीवन कैसे जिया जाय, सुखद मृत्यु कैसे हो एवम् मृत्यु के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो ?" क्योंकि वेद के यही तीनों उद्देश्य हैं और पूरे समाज की रचना इसी आधार पर की गयी थी ।*** विप्रों, ब्राह्मणों, सन्यासियों एवम् आश्रमों की रख-रखाव, भोजन पानी की पूरी व्यवस्था का भार राज्य एवम् समाज द्वारा वहन किया जाता था । दान देना हर व्यक्ति के लिए इसीलिए बाध्य कर्म था । बाद में लोग इसे अपनी श्रद्धा एवम् अनुकम्पा से जोड़ने लगे । **मानव शरीर का पाचन संस्थान जो भोजन पचाता है, उसके द्वारा बना ग्लूकोज़ का 80% मस्तिष्क को भेजा जाता है ।** मानव मस्तिष्क स्वस्थ रहे, पवित्र रहे तो मानव शरीर भी स्वस्थ व सुखी रहेगा; यह था सिद्धान्त इस प्रक्रिया की पृष्ठभूमि में।

अन्य उपयोगी प्रावधान :-

*1. **चार आश्रम** :-* मानव जीवन को चार आश्रमों, *1.* **ब्रह्मचर्य** (वेदाध्ययन काल), *2.* **गृहस्थ** (सन्तानोत्पत्ति काल), *3.* **वानप्रस्थ** (वन की ओर चलने की तैयारी अर्थात् धीरे-धीरे सब कुछ त्यागने का अभ्यास करने का क्रम) एवम् *4.* **सन्यास** (सम्पूर्ण रूप से जंगल में रहकर अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन करने का अभ्यास) में बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से बाँटा गया था ।

*2. **सोलह संस्कार** :-* सोलह संस्कारों के द्वारा मानव जीवन को सुसंस्कृत एवम् श्रेष्ठ बनाने की विद्या विकसित की गयी थी । इन संस्कारों में **गर्भाधान संस्कार, उपनयन संस्कार एवम् दीक्षा, यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन तथा पाणिग्रहण अधिक महत्वपूर्ण संस्कार हैं,** जिनसे मानव जीवन चरित्रवान बनता है तथा हर घटक के चरित्रवान होने से समाज व राष्ट्र भी महान बनता था ।

*3. **न्याय प्रणाली** :-* हर व्यक्ति अपने कर्त्तव्य पर अधिक ध्यान रखता था । अधिकार स्वयं प्राप्त हो जाते थे । अधिकार की लड़ाई शायद ही कहीं होती थी । यदि कभी होती भी थी, तो त्वरित न्याय व्यवस्था द्वारा उसे शीघ्र ही शान्ति पूर्वक सुलझा लिया जाता था । हर ग्राम व नगर में श्रेष्ठ गणमान्य एवम् चरित्रवान व्यक्तियों के द्वारा चुनी हुई पंचायत होती थी । ये पंच परमेश्वर जो फैसला देते थे, वह अन्तिम होता था । इन पंचों को भी शास्त्रानुसार निर्णय करना बाध्य था । राजा के न्यायालय तक तो शायद ही कभी कोई झगड़ा पहुँचता था । राजा भेष बदल कर राज्य में क्या कुछ हो रहा है, स्वयम् छुप कर देखता था । यदि कहीं भी अन्याय होता हो, गरीबी हो, अभाव हो, तो उसे शीघ्र दूर करना उसका पहला दायित्व था । कर व्यवस्था बहुत ही न्यायपूर्ण ढंग पर आधारित थी । कोई गरीब न रहे, यह देखना राजा का काम था ।

*4. **उद्योग-धंधे** :-* पूरे ग्राम की आवश्यकताओं के लिए आवश्यक उद्योग धन्धे थे । उत्तम किस्म का फौलाद, रेशम उद्योग, कपड़ा उद्योग, कृषि, फलों आदि का उत्पादन बहुत ही सुचारु रूप से किया जाता था । कोई किसी का हक नहीं मारता था । प्रदूषण नाम की कोई चीज़ न थी । प्रकृति अपने पूरे सौष्ठव से पूरे वर्ष सर्वत्र सुहावनी रहती थी । **हर उद्योग का स्वामी जो भी पैदा करता था, तो वह समाज रूपी ब्रह्म को अर्पण करने के लिए करता था ।** लालच, भय, चोरी आदि की भावना का नामोनिशान कहीं भी नहीं था, **लोग घरों में ताले तक नहीं लगाते थे, क्योंकि ऋषि के माध्यम से सभी नागरिकों को कर्मफल का पाठ बचपन से ही घुट्टी में पिला दिया जाता था । दीक्षा एवम् उपनयन के द्वारा यह शिक्षा आठ वर्ष के बालक को कुलगुरु द्वारा दे दी जाती थी ।** इसीलिए यह संस्कार इतना गहरा होता था, कि दण्ड व्यवस्था का कार्य बहुत ही कम था ।

*5. **व्यापार** :-* व्यापारी इसलिए व्यापार करते थे, कि उन्हें समाज के हर वर्ग को चाहे वह कितनी दूरी पर ही क्यों न हो, भोजन, पानी, कपड़ा, मकान आदि की व्यवस्था का कार्य कर्त्तव्य समझ कर पूरा करना होता था । सभी व्यापारी यज्ञ भावना (निष्काम सेवा) द्वारा अपना कार्य करते थे । **कर्म करना है, फल की इच्छा नहीं; यह था उनका ध्येय वाक्य (कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्) । त्याग ही उनका जीवन लक्ष्य होता था ।** इस प्रकार की आदर्श विचारधारा के कारण लालच, मिलावट, धोखाधड़ी, लिप्सा, झूठ, बेईमानी आदि के लिए कोई स्थान नहीं रह गया था । ये सारे आदर्श नित्य प्रति स्थान-स्थान पर धर्म चर्चाओं द्वारा उनके मस्तिष्क में बार-बार डाले जाते थे । जिस प्रकार मुँह (ब्राह्मण) स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन फौरन पेट की ओर भेज देता है तथा पेट (व्यापारी) पूरे भोजन को यथाशीघ्र पचाकर सारे शरीर को भेज देता है, अपने पास नहीं रखता । उसी प्रकार से व्यापारी वर्ग जो कमाता था, उसका थोड़ा-सा अत्यावश्यक अंश अपने पास रख कर ब्राह्मणों, आश्रमों, सन्यासियों एवम् राज्य की सेवा में लगा देता था । इस प्रकार समाज पूर्ण रूप से सुखी रहता था । पेट में खाया हुआ भोजन यदि लगभग अठारह घंटे से अधिक पड़ा रहे, तो सड़ांध शुरू हो जाती है तथा व्यक्ति धीरे-धीरे रोगी होकर मृत हो जाता है, चूँकि आज समाज में धन एक स्थान पर इकट्ठा हो रहा है, इसीलिए चोरी, आगजनी, लूटमार, हत्याएं अपराध हो रहे हैं ।

*6. **राज्य के कर्त्तव्य** :-* वेद, गो, ब्राह्मण एवम् धर्म की रक्षा हेतु राजा के पास कुशल एवम् प्रशिक्षित पुलिस एवम् वाहिनी होती थी । राजा के कर्त्तव्यों में वेद की रक्षा अर्थात् वेद के विचारों की रक्षा, इन विचारों के व्याख्याकार ब्राह्मणों की रक्षा, गो (राष्ट्र एवम् राष्ट्र के निवासी नागरिकों की रक्षा) तथा धर्म की रक्षा अर्थात् हर नागरिक को शास्त्रानुसार चलाने का उत्तरदायित्व राजा का था, ताकि ऋषियों द्वारा अनुमोदित वेद मार्ग पर चल कर हर व्यक्ति मोक्ष तक पहुँच सके । इसके लिए वेद से विपरीत चलने वाले को दण्ड देना धर्म की रक्षा कहलाता था । **इस प्रकार हर स्तर पर अनुशासन एवम् सम्पूर्ण समझ एवम् त्याग के द्वारा ऋषि तन्त्र लागू किया जाता था ।** त्याग से प्रेम और प्रेम से समाज में एकजुटता रहती थी । तब न कोई गरीब था, न अमीर, न रोगी, न दुखी । **मोक्ष प्राप्ति की जिज्ञासा सर्वश्रेष्ठ प्रेरणा स्रोत थी ।** प्रकृति सर्वत्र अनुकूल रहती थी । समय पर ठीक-ठीक वर्षा होती थी । दुर्भिक्ष अथवा प्राकृतिक आपदाएं नहीं होती थी । रामचरित मानस में कहा भी है - *दैहिक, दैविक, भौतिक तापा, राम राज्य काहुँहि नहीं व्यापा ।* ऐसा था राम राज्य का दृश्य, जो ऋषियों ने इस तन्त्र के माध्यम से भारत में लागू किया था, **तब पूरे विश्व में एक ही धर्म था, क्योंकि धर्म दो नहीं हो सकते, पन्थ अलग हो सकते हैं । अतएव यही वह मार्ग है, जिस पर चल कर सभी को सुख, शान्ति, समृद्धि एवम् मोक्ष की प्राप्ति आज भी सम्भव है ।**

उपरोक्त व्यवस्था सम्पूर्णता एवम् वैज्ञानिकता की सोच का परिणाम थी । **परन्तु समय के अन्तराल से वैज्ञानिक पृष्ठभूमि वाले ब्रह्मर्षि लुप्त होते गये और फिर समाज को अन्धविश्वासों ने जकड़ लिया । परिणामतः परावर्ती काल में जो विवेकहीन निर्णय लिए गये, उनसे मात्र देश की सीमाएं ही नहीं सिकुड़ीं, बल्कि धर्म सम्बन्धी घनघोर विवादों के कारण देश अंधकार की ओर बढ़ता चला गया** (तर्क + असुर = तारकासुर की कथा रामचरितमानस एवम् पुराणों में देखने की कृपा करें) आज विश्वगुरु भारत की जो दशा है, वह किसी से छुपी नहीं है । परन्तु अब वैदिक धर्म की आधुनिक विज्ञान द्वारा व्याख्या किए जाने पर, हमें आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास भी है, कि समय शीघ्र ही बदलेगा और भारत राष्ट्र विश्व का मुकुटमणि पुनः बनेगा ।

हरि ॐ तत् सत् !

इंजी०/डा० अवध बिहारी लाल गुप्ता "तन्मय"

नोट :- दिल्ली में दिसम्बर 1998 में विश्व वेद सम्मेलन हुआ था, उसमें यह बतलाया गया था, कि 90% वैदिक साहित्य नष्ट कर दिया गया या देश से बाहर ले जाया गया एवम् अनेक वैदिक विद्वानों को चुन-चुन कर विदेशी शासन के दौरान कत्ल कर दिया गया । अतएव लेख में सुझायी गयी सभी बातों का कोई पक्का साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, किन्तु परिस्थिति जन्य घटनाओं के अध्ययन से लेख की सभी बातें सही लगती हैं । विद्वानों से निवेदन है, कि वे अपनी सम्मति भेजने की कृपा करें ।